मानचित्र और उनकी प्रेतात्माएँ

यमुना सन्नी

पारम्परिक स्कूली शिक्षा की समीक्षाओं में, और कई संगठनों द्वारा विकसित किए गए इसके विकल्पों में भी, अवधारणात्मक शिक्षा के महत्व पर ज़ोर दिया गया है। इसके द्वारा रटकर अध्ययन करने की पद्धति को चुनौती दी गई है और विद्यार्थियों के लिए शिक्षा को रोचक बनाने की कोशिश की गई है। बच्चों को शिक्षा प्रक्रिया के केन्द्र में रखकर, एनसीएफ (राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा), 2005 ने इस प्रवृत्ति को वैधता प्रदान की है और उसे एक संस्थानिक स्वरूप दे दिया है। हालाँकि, ये सभी मूल्यवान योगदान हैं, पर यह दलील दी जाती है कि अकेले इस दृष्टिकोण से बात नहीं बनेगी। हमें ज्ञान के सामाजिक व ऐतिहासिक सन्दर्भों के महत्व को पहचानने की, और उस दृष्टिकोण से पाठ्यक्रम निर्माण के दौरान पाठ्यसामग्री के चयन के तर्क को चुनौती देने की ज़रूरत है। यह मुद्दा खासकर भूगोल शिक्षा में अभी अछूता है।

भूगोल से सम्बन्धित कई बहसें उसके 'विज्ञान' होने बनाम 'सामाजिक विज्ञान' होने के इर्द-गिर्द होती रही हैं। और इस स्थिति का भूगोल की शिक्षा पर नकारात्मक असर पड़ा है। पर्यावरण को लेकर होने वाली समकालीन बहसों के द्वारा भूगोल की इस स्थिति की एक तुलना सामने रखी जा सकती है। कुछ लोग पर्यावरण को मानवविहीन करके उसका संरक्षण करना चाहते हैं। इसलिए राष्ट्रीय उद्यानों और वन्यजीव अभ्यारण्यों द्वारा वहाँ रह रहे जनजातीय समूहों को दूर भगा दिया जाता है और बाकी लोग ऐसे समूहों को पर्यावरण का ही अभिन्न हिस्सा मानते हैं। हालाँकि, ये दृष्टिकोण

उत्पादन प्रक्रियाओं से उपजने वाली गहरी राजनीति से जुड़े हैं, लेकिन यहाँ इनकी बात इसलिए की गई है क्योंकि इस तरह के विचार भूगोल के पाठ्यक्रम को प्रभावित करते हैं। हालाँकि, हम यह स्वीकार करते हैं कि विज्ञान व सामाजिक विज्ञान के दर्शन, कार्य-पद्धतियाँ आदि भिन्न हैं, जो कि उन्हें ज्ञान के अलग-अलग क्षेत्रों के रूप में सीमांकित करते हैं, पर शिक्षा के जगत में संवाद की ज़रूरत को ज़्यादा-से-ज़्यादा महसूस किया जा रहा है। जहाँ मुख्यतः बीसवीं सदी के मध्य में सामाजिक विज्ञानों पर विज्ञान के तौर-तरीकों का भारी असर पड़ा, वहीं वर्तमान काल में स्थिति इससे भिन्न है। आज विज्ञान की शिक्षा में भी विद्यार्थियों के बीच दुनिया की बेहतर समझ विकसित करने के लिए सामाजिक सन्दर्भों तथा विज्ञान के इतिहास और दर्शन पर ध्यान देने की बात कही जा रही है।

ज्ञान के एक क्षेत्र के रूप में भूगोल प्राकृतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान, दोनों के आधार पर विकसित हुआ है। पर करीब 40-50 साल पहले तक, 'मानव भूगोल' तक ने प्राकृतिक विज्ञान के तर्क को अपनाया हुआ था। सामाजिक भूगोल का विकास अपेक्षाकृत नई प्रक्रिया है और यह ऐसा क्षेत्र है जो स्कूली शिक्षा में नदारद-सा है।

यह लेख इस तथ्य की पड़ताल करने की कोशिश है कि किस प्रकार शिक्षा में ज्ञान के सामाजिक सन्दर्भों को अलग-थलग या अनदेखा कर दिया जाता है। मार्क्सवादी विज्ञान शिक्षा-शास्त्री मैथ्यूज़ का कहना था कि विज्ञान के स्कूली पाठ्यक्रम में उसके दर्शन और उसके इतिहास को शामिल किया जाना ज़रूरी है। उनकी बात से यह भी पता चलता है कि स्कूली शिक्षा की विषयवस्तु में सामाजिक और ऐतिहासिक सन्दर्भों के महत्व को नज़र अन्दाज़ कर दिया जाता है; इस विषयवस्तु में केवल अन्तिम उत्पादों की रचना पर ज़ोर दिया जाता है। अतः ऐसी स्थिति के चलते विद्यार्थियों के बीच विज्ञान की समझ विकसित होने में समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, और मैथ्यूज़ इसे समाज के भीतर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास न हो पाने का एक प्रमुख कारण मानते हैं।

इसके अलावा हम यह भी देख सकते हैं कि जब पाठ्यसामग्री में सिर्फ ज्ञान के अन्तिम उत्पादों को ही शामिल किया जाता है, तो उसे बनाने वाले इतिहास और राजनीति कहीं गुम जाते हैं। ज्ञान सृजन की प्रक्रिया में अन्तर्निहित संघर्ष और संवाद भी नदारद रहते हैं। इस तरह इससे 'तटस्थ' ज्ञान की एक मिथ्या छवि सामने आती है। एक तरफ विज्ञान, और दूसरी तरफ उसके इतिहास दर्शन आदि के बीच की दूरी को शिक्षा के अन्दर बहुत स्पष्ट रूप से रचा और बरकरार रखा जाता है। अतः शिक्षा का ढाँचा ही ऐसा है कि विज्ञान के विद्यार्थी को विज्ञान के सृजन में

अन्तर्निहित सामाजिक, राजनैतिक और दार्शनिक प्रक्रियाओं से अलग रखा जाता है। और दुनिया को नियंत्रित करने और उसे आकार देने वाले ज्ञान के रूप में विज्ञान का दर्ज़ा इस अलगाव को और मज़बूती देता है।

भूगोल का इतिहास दर्शाता है कि ऊपर दिए गए तर्कों को ध्यान में रखते हुए उससे बहुत कुछ सीखा जा सकता है। पर विरोधाभासी बात यह है कि इन सीखों का उसकी स्कूली पढ़ाई में कोई योगदान नहीं दिखाई देता। मानव भूगोल को समझने में प्राकृतिक विज्ञान के खाँचों का इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति की कड़ी समीक्षाओं के चलते सामाजिक भूगोल और आमूल सुधारवादी भूगोल (radical geography) के विकास ने गति पकड़ी। उन्नीस सौ सत्तर के दशक में कई भूगोलविदों ने शहरी क्षेत्रों और पलायन के बारे में अन्य भूगोलवेत्ताओं द्वारा किए जाने वाले विश्लेषण में न्यूटनवादी भौतिकी के उपयोग की समीक्षा की। और स्टॉडार्ट (1986) ने मानव भूगोल में डार्विन के सिद्धान्तों की काट-छाँट कर उपयोग करने की आलोचना की थी। पिछली करीब आधी सदी में भूगोलवेत्ताओं द्वारा स्थान या जगह (space) की ऐसी समृद्ध व्याख्याएँ की गई हैं जिनमें उसे केवल एक भौतिक अस्तित्व न मानते हुए ऐतिहासिक और राजनैतिक अस्तित्व भी माना गया है। पर स्कूली भूगोल में इन परिवर्तनों को अभी तक स्थान नहीं दिया गया है।

नीचे, भूगोल के पाठ्यक्रम के एक सशक्त पहलू, मानचित्रों की पुनर्व्याख्या द्वारा इन तर्कों को एक ठोस ढंग से सामने रखा जाएगा। स्कूली पाठ्य-पुस्तकों में और आम तौर पर भी मानचित्रों के विशेष उद्देश्य ये माने जाते हैं:

1. स्थानों को दर्शाने के लिए विषय वस्तुओं का निरूपण। उदाहरण के लिए, राजधानियों, नदियों, कृषि-क्षेत्रों आदि की स्थिति।
2. मानचित्र अध्ययन जिसमें मानचित्रों में उपयोग किए जाने वाले संकेतों, रंगों, दिशा और पैमाने का कूट वाचन करना। अलग-अलग रंग, और संकेत क्या प्रदर्शित करते हैं? मानचित्र द्वारा प्रदर्शित धरातलीय दूरियाँ क्या हैं? मानचित्र की दूरियों का धरातलीय दूरियों में गणितीय रूपान्तरण महत्वपूर्ण अभ्यास बन जाता है। मानचित्रों में 'उत्तर' को ऊपर दिखाने की परम्परा का अनुसरण किया जाता है।
3. राष्ट्र, राज्यों आदि की सीमाएँ भी मानचित्र अध्ययन के महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं।

मानचित्रों की पुनः व्याख्या

भूगोल की व्यापक पहचान पृथ्वी के अध्ययन के रूप में होती है, जिससे स्थानिक आयाम को लेकर अन्तर्निहित दिलचस्पी ज़ाहिर होती है। स्थान (स्पेस) में भौतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और राजनैतिक आदि

कई अवधारणात्मक और प्रायोगिक निहितार्थ होते हैं। जिसे आज हम भूगोल कहते हैं वह मुख्य रूप से स्थान (स्पेस) की ऐसी समझ है जो मुख्यतः साम्राज्यवाद और यूरोपीय पूँजीवाद की माँगों को पूरा करने के लिए विकसित हुई थी। पर विकास के अलग-अलग ऐतिहासिक और क्षेत्रीय चरणों में दुनिया भर के समाजों ने स्पेस के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाए और उसके साथ उनके सम्बन्ध भी भिन्न-भिन्न रहे। मछली मारने, शिकार करने, भोजन संग्रहण, कृषि आदि के माध्यम से गुज़र-बसर करने से लेकर, स्थाई नदी घाटी की कृषि तक, उत्पादन और सामाजिक सम्बन्धों में ऐतिहासिक बदलाव हुए हैं। स्थाई कृषि से आवश्यकता से अधिक उत्पादन होने लगा। व्यापार और व्यापारिक केन्द्रों के उद्‌भव और दुनिया के विभिन्न हिस्सों में पूंजीवाद की शुरुआत से और भी नए स्थानिक आचार-विचार और सूझबूझ सामने आईं। इन प्रक्रियाओं और बदलावों से विभिन्न समाजों के भीतर के सामाजिक दायरों में भी बदलाव हुआ - गुज़र-बसर भर कर पाने वाले समाजों, जैसे कि जनजातियों से अतिरिक्त उत्पादन करने वाले समाजों में हुआ रूपान्तरण। जन-जातीय समतावादी सम्बन्धों में बदलाव हुआ और वे अतिरिक्त उत्पादन करने वाले सुविधा-सम्पन्न लोगों के जाति, लिंग, वर्ग इत्यादि पर आधारित ऊँच-नीच के रिश्तों में परिवर्तित हो गए।

स्थानिक सम्बन्ध हमेशा सामाजिक सम्बन्धों से जुदा नहीं होते। यदि हम मानचित्र रचना के कुछ खास उदाहरणों को देखें तो पाएँगे कि सामाजिक सन्दर्भ और ज़रूरतें विभिन्न प्रकार के मानचित्रों को जन्म देती हैं। उदाहरण के लिए, उत्तरी ध्रुवीय क्षेत्रों में निवास करने वाले एस्कीमो लोग अपनी रोज़ी के लिए मछली मारते थे और शायद इसीलिए उन्होंने अपने क्रियाकलापों के क्षेत्र में पड़ने वाली खाड़ियों और इनलेट्स (जल-प्रवेशिकाओं) के बारे में ज्ञान विकसित किया। उन्होंने मछली पकड़ने जाने और फिर वापस घर लौटने के अपने रोज़ाना के सफरों में

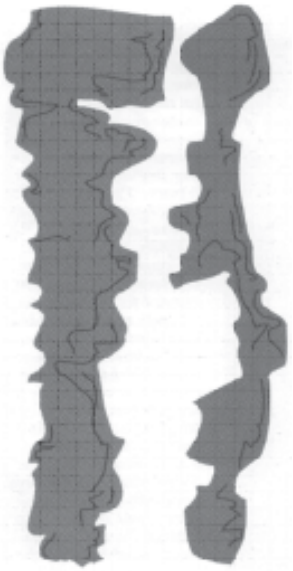

चित्र 1: एस्कीमों लोगों द्वारा मछली वाले क्षेत्र और आने-जाने के ब्यौरों को लक्कड़ों पर उकेरा गया था।

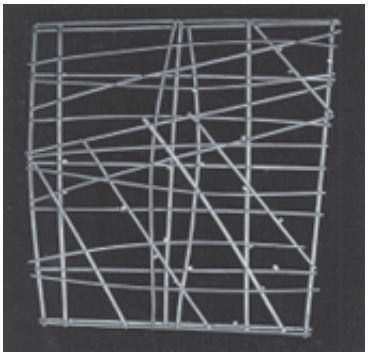

चित्र 2: प्रशान्त महासागर के मार्शल द्वीप समूह के लोगों ने मत्स्य अखेट में मददगार नक्शे बनाए। इन नक्शों में ज्वार के स्तर, द्वीपों की स्थितियों को छाल, सीपी, रेशों से दर्शाया जाता था।

साथ ले जाने के लिए नक्शे बनाए। ये लक्कड़ों पर विस्तृत रूप से उकेरे गए मानचित्र थे (चित्रः1)। साथ ही, इनका उपयोगिता मूल्य बहुत अधिक था, और ये उन विशेष सन्दर्भों में ज्ञान के सृजन को दर्शाते हैं। इसका एक तुलनात्मक सामाजिक और स्थानिक उदाहरण प्रशान्त महासागर में स्थित मार्शल द्वीप-समूहों में मिलता है। वहाँ के लोगों ने भी ऐसे मानचित्र बनाए हैं जो कि मत्स्य आखेट के लिए की जाने वाली उनकी रोज़ाना की समुद्री यात्राओं में मदद पहुँचाते हैं (चित्रः 2)। इनमें उच्च ज्वार के स्तरों, विभिन्न द्वीपों की स्थितियों आदि को नारियल के छालों की लकड़ियों, सीपों, रेशों आदि से चिन्हित किया जाता है।

चित्रः 3 एक अन्य प्रकार का मान-चित्र दर्शाता है जो किसी ऐतिहासिक घटना को दर्ज़ करने की कोशिश करता है। यह ऐज़्टैक समुदाय के देशान्तर गमन का चित्र-पत्र है जो आज के

चित्र 3: ऐज़्टैक समुदाय द्वारा देशान्तर गमन का चित्र पत्र।

चित्र 4: ईराक से मिली मिट्टी की तख्ती, जिस पर विविध प्रतीकों के माध्यम से भू-अभिलेखन किया गया है।

मैक्सिको में 14वीं से लेकर 16वीं सदी तक रहने वाले लोग थे। किंवदन्ती के अनुसार वे लोग ऐज़्टलान नामक द्वीप से आए थे जिसका मतलब होता है 'श्वेत स्थल' या 'बगुलों का स्थान'। देशान्तर-गमन चित्र-पत्र उन्हें ऐज़्टलान छोड़कर जाते दिखाते हैं। जब 16वीं सदी में स्पेनी लोग दुनिया के उस हिस्से में पहुँचे, तब ऐज़्टैक लोग अमरीकी महाद्वीपों की सबसे बड़ी शक्तियों में से एक बन चुके थे।

देशान्तर गमन चित्र-पत्र एक बिलकुल जुदा किस्म का स्थानिक प्रतिनिधित्व दर्शाता है। इसमें नक्शे का सन्दर्भ धरातल पर सही दिशा ज्ञान हासिल करना न होकर ऐसे तथ्य को दर्शाना है जो किसी निश्चित जगह को छोड़ने या किसी अन्य स्थान की ओर जाने के सिलसिले से सम्बद्ध होता है। ऐसे सामाजिक सन्दर्भ में मानचित्र के मुख्य लक्षण भी बदल जाते हैं। अनुपात, परिदृश्य के आकार और समुद्र के ज्वार आदि के सन्दर्भ में स्थानिक सटीकता यहाँ महत्व के नहीं हैं। नक्शे की भाषा और प्रतीकवाद स्थानिक प्रतिनिधित्व का एक और प्रकार बनाता है जो कि ऐतिहासिक और शायद भावपूर्ण है। आप देख सकते हैं कि पानी से यात्रा को एक नाव द्वारा दर्शाया गया है और भूमि यात्रा को पदचाप द्वारा दिखाया गया है।

राज्यों और राजतंत्रों के विकास ने नए स्थानिक सम्बन्ध विकसित किए थे। क्षेत्रीय स्वामित्व, लड़ाइयों के रूप में प्रतिवाद, प्रभावी कर-निर्धारण के लिए ज़मीन के ब्यौरों के दस्तावेज़ीकरण जैसी बातों ने नई स्थानिक स्थितियों को जन्म दिया। ईराक से मिली पकाई हुई मिट्टी की तख्ती ऐसा ही एक निरूपण है; यह भूमि अभिलेखों का

एक दस्तावेज़ है। यहाँ नदी, पहाड़ और भूमि के विवरण विभिन्न प्रतीकों के उपयोग द्वारा दिखाए गए हैं।

साम्राज्यवाद और ज्ञान का सह-निर्माण

सत्रहवीं सदी में यूरोपीय लोगों की अफ्रीका, एशिया और अमरीका की सामुद्रिक यात्राओं से मानचित्र रचने के लिए एक नया सन्दर्भ उभरा। मानचित्रण का एक नया दौर शुरू हुआ। जल-परिवहन मार्ग, अक्षांश और देशान्तर रेखाओं का सुनिश्चितीकरण, विश्व मानचित्रों की रचना इत्यादि मानचित्रण के नए और विशिष्ट उद्देश्यों को परिभाषित करते हैं। यूरोप द्वारा गैर-यूरोपीय दुनिया और उसके संसाधनों तक पहुँच बनाने के लिए और उनका ब्यौरा रखने के लिए मानचित्रण को पुनःपरिभाषित किया गया। राज्य विस्तार की प्रक्रियाओं, कच्चे माल के संग्रह और उत्पादन-प्रक्रिया के स्वरूप ने ज्ञान सृजन की नई परिस्थितियाँ निर्मित कीं। भूगोल को उसकी स्थानिक विषयवस्तु के माध्यम से साम्राज्यवादी उद्देश्य के लिए अपनाया और ढाला गया। मानचित्रण के इन पक्षों के साथ नई कार्यपद्धतियों का विकास हुआ और निरूपण का मानकीकरण भी हुआ। ये सभी विशेषताएँ मिलकर 'आधुनिक मानचित्रण' को परिभाषित करती हैं। इन्हें इसलिए भी विकसित किया गया ताकि ये आधुनिक युद्धों के मद्देनज़र प्रभावी उपकरण बन सकें: शान्तिकाल की तुलना में प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्धों के दौरान ज़्यादा मानचित्र बनाए गए।

आधुनिक मानचित्रण ने मानचित्रों की संख्या पर, निरूपित किए जाने वाले धरातल के विस्तार पर और आधुनिक प्रिंटिंग प्रेस के माध्यम से उनके संस्करणों के बड़ी संख्या में उत्पादन पर गहरा असर डाला है। पर यूरोपीय औपनिवेशीकरण के दौर से पहले स्थिति ऐसी नहीं थी। राज (2006) ने औपनिवेशिक भारत में मानचित्र रचना के ऐतिहासिक सन्दर्भों की पड़ताल की है। ब्रिटिश लोग जब भारत आए थे तो उनके पास पहले से मानचित्रण की कोई सुविकसित परम्परा नहीं थी। दरअसल, भारत और यूरोप, दोनों की मानचित्रण परम्पराएँ काफी हद तक तुलना करने योग्य थीं। 1760 के दशक में, जब भारत में बृहद-स्तरीय सर्वेक्षण कार्य का बीड़ा उठाया जा रहा था, उस समय तक स्कॉटलैंड के मानचित्र के उल्लेखनीय अपवाद को छोड़कर ब्रिटिश द्वीपसमूहों का कोई एकीकृत विस्तृत मानचित्र नहीं था। और उन्नीसवीं सदी के पूर्व, दो सौ से ज्यादा मानचित्र मौजूद हैं जो मुख्यतः दक्षिण एशिया के उत्तर पश्चिमी, मध्य भाग और पश्चिमी भागों को दर्शाते हैं, हालाँकि उपमहाद्वीप के कोई संयुक्त मानचित्र नहीं थे। अँग्रेज़ों द्वारा इस क्षेत्र में किए गए कई सर्वेक्षण इस इलाके में पहले से इस्तेमाल हो रही तकनीकों और वहाँ की जनशक्ति के

माध्यम से किए गए।

मुगल नौकरशाही में किसी हद तक मानचित्र साक्षरता पैदा हुई थी और उसका इस्तेमाल प्रशासन में, राजस्व इकट्ठा करने के लिए इस्तेमाल होने वाले राजपत्रों और नियम-पुस्तिकाओं में दिखाई देता है। इनमें प्रान्तों और उनके उपखण्डों का सिलसिलेवार वर्णन होता था, और उनकी स्थिति तथा विस्तार दिखाया जाता था, पर ये हमारे आज के देशव्यापी नक्शों के जैसा काम नहीं कर सकते थे। दक्षिण एशिया के यंत्र निर्माताओं द्वारा बनाया गया ऐस्ट्रोलेब यंत्र (उन्नतांशमापी) कम-से-कम चौदहवीं सदी के आरम्भ से खगोलज्ञों द्वारा धरातलीय और आकाशीय अक्षों को मापने के लिए व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाता था।

यंत्र निर्माताओं के मध्य व दक्षिण एशिया के बीच घूमते रहने से एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में कौशलों का प्रसार हुआ। इसी प्रकार ब्रिटेन में किए जाने वाले तटीय सर्वेक्षण के तरीकों को भारत में भूतल सर्वेक्षण के लिए अपनाया गया। ऐसी कई प्रक्रियाओं से हमें पता चलता है कि विशिष्ट परिस्थितियों में कई तौर-तरीके एक साथ आकर ज्ञान के नए रूपों का सृजन करते हैं। 'हमें इस दावे को स्वीकार करना होगा कि यह ज्ञान उपनिवेशित लोगों पर की गई उपनिवेशी लोगों की संकल्पित गतिविधि के फलस्वरूप सृजित हुआ। वाकई, यहाँ पर ज्ञान के जिन प्रकारों की चर्चा की गई है वे औपचारिक संस्थाओं के मज़बूत ढाँचे और आपसी सहयोग तथा श्रम के बहुतलीय विभाजन जैसी अनिवार्यताओं द्वारा ही रचे और बरकरार रखे जा सकते थे' (राज; 93)। यह बात खास तौर पर भारतीय सर्वेक्षण विभाग के कार्य पर लागू होती है जिसका उस दौर का सर्वाधिक चर्चित त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण 'उपमहाद्वीप की लम्बाई में उत्तर की ओर 1600 मील तक किया गया था; और उसके अंकित किए गए स्थानों की एक-एक इंच की सटीकता पर बाकी सभी सर्वेक्षण और स्थान निर्भर थे' (केई, 2000; 19)।

तिब्बत, मंगोलिया और मध्य एशिया के पर्वतीय भूभागों के सर्वेक्षण का विशेष उल्लेख करना ज़रूरी है क्योंकि वे विशिष्ट सामाजिक परिस्थितियों और कार्यपद्धतियों को निरूपित करते हैं। उन्नीसवीं सदी के मध्य में ब्रिटेन और रूस के बीच इन पर्वतीय भूभागों पर आधिपत्य हासिल करने की प्रतिस्पर्धा थी। और ब्रिटिश लोगों को यह लगा कि उन्हें किसी भी कीमत पर इन क्षेत्रों का मानचित्रण कर वहाँ स्थिरता लाना चाहिए, जो उनके और ज़ार-शासित रूस के मध्य में पड़ते हैं। 1857 के विद्रोह के बाद, हिमालय क्षेत्र में स्थित पर्यटन स्थलों शिमला और दार्जिलिंग को ब्रिटिश भारत के राजनैतिक व सैनिक मुख्यालय के रूप में सामरिक महत्व मिलना शुरू हो गया। इन पर्वतीय क्षेत्रों के लोग

घुसपैठियों और जासूसों को लेकर बहुत शंकित रहते थे और ऐसे कई मामले थे जिनमें अँग्रेज़ों को मार दिया गया। अतः अँग्रेज़ मैदानी भागों की तर्ज पर पर्वतीय क्षेत्रों के मानचित्रण का प्रयास नहीं कर सके।

इसलिए स्थानीय लोगों द्वारा नक्शे बनाने की कोशिश की गई। वर्ष 1865 से वर्ष 1885 के दौरान, भारतीय सर्वेक्षण विभाग द्वारा नैन सिंह और किशन सिंह को इन उच्च भूमियों के अन्वेषकों के रूप में भेजा गया। उन्हें लोगों की सन्देह भरी नज़रों से बचने के लिए साधारण पर्यटकों की तरह से आगे बढ़ना था। वे अपने साथ जाप माला और प्रार्थना चक्र लिए थे, जिनसे न सिर्फ उनकी पहचान छुप सकी, बल्कि बाकी लोगों से एक दूरी भी बनी रही। और इस तरह के स्वाँग अभिलेखन करने के छद्म माध्यम बनेः

'सौ कदम चलने के बाद एक मनका गिना जाता था, बड़ा वाला हज़ार दर्शाता था...प्रार्थना चक्र को कुछ ऐसे फिट किया जाता था कि उस पर कागज़ की वे बड़ी-बड़ी पट्टियाँ लगाई जा सकें जिन पर वे लोग अपने सर्वेक्षण की जानकारियाँ लिखते थे' (रावत, 1973; 16)।

तब तक यह सुनिश्चित नहीं हुआ था कि सैंगपो नदी ब्रह्मपुत्र का ऊपरी प्रसार है। 1884-6 में, इस कठिन कार्य को किन्थुप द्वारा अंजाम दिया गया और उसका साथ दिया एक चीनी लामा ने जिसे कि 'सैंगपो में निशान लगे लट्ठे फेंकने के लिए कहा गया था...इससे पहले देहांग और ब्रह्मपुत्र नदियों के संगम स्थल पर यह सुनिश्चित करने के लिए चौकीदारों को तैनात किया गया था कि क्या लट्ठे नदी के प्रवाह में बहकर नीचे आ जाते हैं जिससे कि सैंगपो के आसाम की ब्रह्मपुत्र का ही एक भाग होने की यह बात बिलकुल संशय-मुक्त हो सके' (पूर्वोक्त, 181)।

नैन सिंह

इन लोगों ने बहुत गहरी प्रतिबद्धता के साथ अपनी जान को ज़ोखिम में डालकर इस क्षेत्र का मानचित्रण किया। राज समझाते हैं कि कैसे 'पण्डित' और 'मुंशी' की उपाधियाँ भी इन देशी मानचित्रकारों को वैधता प्रदान करने का एक साधन थीं। यह भी उल्लेखनीय है कि दूरियों को कदमों से नापना, जिसे कि सामान्य वैज्ञानिक व तकनीकी वातावरण में स्वीकार नहीं किया जाता, इसे करने का सबसे सटीक माध्यम था।

इसी प्रकार बहुत सारे स्थानीय लोगों ने ऐसे कार्य का बीड़ा उठाया जो सम्भवतः तिब्बती पर्वतभूमि की उस खास परिस्थिति में उपनिवेशियों और उपनिवेशितों के साझा प्रयास के बगैर नहीं किया जा सकता है। राज कहते हैं:

'...वह सम्पर्क क्षेत्र उस प्रमाणित ज्ञान का सृजनस्थल था जो दक्षिण एशियाई और यूरोपीय लोगों के बौद्धिक और सांसारिक तौर-तरीकों के बीच यहाँ हुए अन्तर-सांस्कृतिक मिलन के बिना नहीं हो सकता था।'

स्थलाकृतिक नक्शे (topographical maps)

स्थलाकृतिक नक्शे देश के हर भाग के कुछ सबसे विस्तृत नक्शे होते हैं और इन्हें भारतीय सर्वेक्षण विभाग द्वारा बनाया जाता है। यह मानचित्रण 1802 में ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा शुरू किया गया था और फिर 1857 से यह ब्रिटिश राज के अधीन आ गया। स्थलाकृतिक नक्शे फ्रांस और ब्रिटेन में सेना द्वारा तैयार किए जाते थे ताकि लड़ाई की योजना बनाने में और रक्षात्मक सशक्तिकरण में मदद मिल सके। आज यह कार्य औपचारिक रूप से रक्षा मंत्रालय के अधीन होता है। सेना के कर्मचारियों के प्रशिक्षण में स्थलाकृतिक नक्शों को समझने का प्रशिक्षण भी शामिल होता है। ये विस्तृत नक्शे कंटूर रेखाओं के इस्तेमाल द्वारा धरातलीय अभिन्यास को दर्शाते हैं। इनसे पर्वतों, पहाड़ियों, पठारों की ऊँचाई, आकार और ढाल को दर्शाया जाता है। ये नक्शे जंगल, बस्तियाँ, नदियाँ, कुएँ, सोते, रेल, सड़क, मस्जिद, मन्दिर, चर्च इत्यादि भी दर्शाते हैं। ये नक्शे आम तौर पर 1:50,000 के पैमाने पर बनाए जाते हैं जिसका अर्थ होता है नक्शे पर 1 सेन्टीमीटर, ज़मीन के 50 किलोमीटर को दर्शाता है और इससे नक्शे पर काफी सारी जानकारियाँ दर्शाई जा सकती हैं। आप दिक्सूचक का इस्तेमाल करके धरातल के दिक्विन्यास (orientation) के मुताबिक नक्शे के स्थानों का धरातल पर सही निर्धारण कर सकते हैं। आप नक्शे को इस तरह रख सकते हैं कि उसके उत्तर का धरातल के उत्तर के साथ मेल बैठ जाए। आप उन वर्णित क्षेत्रों को पहचान सकते हैं जो धरातल पर एकदम से दिखाई देते हों और जिन्हें नक्शे में भी निरूपित किया गया हो। और जो चीज़ें आप एकदम से नहीं

देख पाते, उन्हें नक्शे पर से समझा जा सकता है।

1980 के दशक तक बेहद विस्तृत और स्थानीय जानकारी देने वाले कंप्यूटरीकृत नक्शों का चलन शुरू हो गया। डिजिटल ऐलीवेशन नमूने शुरू में स्थलाकृतिक नक्शों और हवाई जहाज़ से खींचे चित्रों की त्रि-आयामी तस्वीरों की मदद से संकलित किए गए। ये नक्शे सार्वजनिक रूप से आसानी से उपलब्ध हैं।

नक्शे और युद्ध

ब्राउन ने अपनी किताब 'द स्टोरी ऑफ मैप्स' में द्वितीय विश्वयुद्ध के वक्त होने वाली मानचित्र रचना का जीवन्त वर्णन पेश किया है। मानचित्रण अचानक से एक बड़ी ज़रूरत बन गई - यह अहसास हुआ कि दुनिया में पर्याप्त नक्शे नहीं हैं:

'अमरीका और उसके सहयोगी राष्ट्रों को पहला कठोर झटका तब लगा जब यह पाया गया कि अफसोस, दुनिया का नक्शा तो अभी बनाया ही नहीं गया है' और फिर यह भी कि 'युद्ध संयंत्रों के निर्माण के लिए सही ठिकाने, सामरिक सामग्रियों के वितरण के लिए उचित लोकेशन का स्थापन और वितरण, सैन्य टुकड़ियों का जुटाव और उनकी गतिविधि, सभी कुछ ऐसे नक्शों पर निर्भर थे जो कि तब तक बने ही नहीं थे।'

और आज जब पृथ्वी के चित्रण के रूप में मानचित्र को उपग्रहों से लिए जाने वाले चित्रों तक विस्तृत किया जा सकता है, तो ऐसी तकनीकें लड़ाई की नई सीमाओं को आधार देती हैं, जिसका अच्छा खासा उदाहरण इराक के विरुद्ध अमरीकी युद्ध था।

मानकीकरण की सीमाएँ

यह देखा गया है कि विभिन्न ऐतिहासिक सन्दर्भों में मानचित्र अलग-अलग ढंगों से बनाए गए हैं। अतः उनके स्वरूप को लेकर या उनको बनाने की तकनीक को लेकर कोई एकमात्र या परम सत्य नहीं है। उनके विभिन्न सन्दर्भ ही महत्वपूर्ण हकीकत हैं। इसलिए आज हमारे पास विश्व मानचित्रों को बनाने के 200 से ज़्यादा तरीके हैं। पर ऐसा होने के बावजूद मानचित्रों को लेकर अलग-अलग राजनैतिक रुख रहे हैं क्योंकि वे 'विश्व दर्शन' कराते हैं।

सन् 1569 में हॉलैण्ड के नाविक मर्केटर ने समुद्री यात्राओं के दौरान सही दिशाओं का पता चले इसलिए दुनिया का नक्शा बनाया। इस नक्शे को संचार और शिक्षा के लिए प्रचारित किया गया। नक्शे के रूप में यह नाविकों के लिए एकदम सही था लेकिन इस नक्शे में भूभागों के आकार सम्बन्धी अनेक विसंगतियाँ हैं। मर्केटर नक्शे में भूमध्यरेखा के पास स्थित एशिया और अफ्रीका के मुकाबले उत्तरी महाद्वीप आकार में कहीं ज़्यादा बड़े दिखाए गए हैं। 1970 के दशक में अर्नो पीटर ने दुनिया का एक और तरह का नक्शा

बनाया। यह नक्शा इस मायने में ग्लोब के करीब था कि सभी महाद्वीपों के आकार (साइज़) उसी अनुपात में थे, जिस अनुपात में ग्लोब पर होते हैं। पीटर के नक्शे ने उत्तर के शक्तिशाली देशों द्वारा खुद को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाए जाने से परे जाकर दुनिया को देखने का एक सुधरा हुआ नज़रिया दिया है।

पश्चिम के शहरों में सड़कों के ऐसे विस्तृत नक्शों के माध्यम से मानचित्रों के उपयोग की एक आम परिस्थिति बन गई है जो कि शहर के भीतर लोगों की रोज़मर्रा की आवा-जाही में इस्तेमाल होने वाले साधनों का अभिन्न हिस्सा बन चुके हैं। अतः वहाँ रहने वाले लोग 'मानचित्र साक्षर' हो गए हैं। यह स्थिति पहले वर्णित ऐस्कीमो समाज द्वारा तथा मार्शल द्वीप इत्यादि स्थानों पर बनाए जाने व उपयोग किए जाने वाले नक्शों के जैसी ही है।

नाटमो (नेशनल एट्लस एंड थीमेटिक मैपिंग ऑर्गनाइज़ेशन) ने हाल ही में भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन का एक मानचित्र प्रकाशित किया है जिसमें 1850 से लेकर 1950 तक के काल को समाहित किया है। यह किताब सौ वर्षों के घटनाक्रमों, जैसे कि दक्षिण एशिया में प्रारम्भिक यूरोपीय बसाहटों से लेकर ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार, उसके प्रतिरोध में चले विभिन्न आन्दोलनों तथा देश के विभाजन तक का सचित्र वर्णन करती है। यहाँ, किसी को अपने घर वापस जाने का रास्ता ढूँढ़ने के उपयोगितावादी उद्देश्य की बजाय ऐतिहासिक घटनाएँ मानचित्र बनाने का सन्दर्भ बन गईं। इस तरह के मानचित्र निर्माण के उद्देश्य की तुलना उदाहरणतः एज़्टैक लोगों द्वारा अपनी मातृभूमि को छोड़कर जाने की घटना को दिखाने वाले देशान्तर चित्र-पत्र से की जा सकती है।

स्कूली शिक्षा में नक्शे

जब हम भूगोल के व मानचित्रों के इतिहास को शिक्षा की समस्याओं के साथ मिलाकर देखते हैं, तो हमें भूगोल के विद्यार्थियों के लिए मानचित्र की विवेचना में और अर्थ जोड़ने हेतु निम्न-लिखित सम्भावनाएँ दिखाई देती हैं:

1. अलग-अलग कालों व स्थानों में बनाए गए विभिन्न मानचित्रों के सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक सन्दर्भों की पड़ताल करना।
2. भूगोल-शिक्षा की ज़रूरतों के मुताबिक विद्यार्थियों के लिए एक नए सन्दर्भ को तैयार करते हुए नए मानचित्र बनाए जा सकते हैं।

पर यह देखा जा सकता है कि स्कूली व कॉलेज शिक्षा में ऐसा कुछ नहीं किया जाता। मानचित्रकार की भूमिका और इससे इतर नक्शों की सम्भावनाओं की पड़ताल नहीं की जाती जिससे तटस्थता का भान होता है। उदाहरण के लिए, स्कूली पाठ्यपुस्तकों के मानचित्रों में संकेतों आदि के मानकीकरण का गहरा भान मौजूद रहता है।

'मानचित्रों की एक सार्वभौमिक

भाषा होती है जो सभी के द्वारा समझी जा सकती है। इन संकेतों के उपयोग को लेकर एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता है। इन्हें पारम्परिक संकेत कहा जाता है। कुछ पारम्परिक संकेतों को चित्र में दिखाया गया है' (एनसीईआरटी, कक्षा 6; 26)।

पर ये सिर्फ स्थलाकृतिक मानचित्रों के मानकीकृत संकेत हैं; यह मानकीकरण अन्य मानचित्रों पर लागू नहीं होता। और स्थलाकृतिक मानचित्र ऐसी चीज़ है जो कि विद्यार्थी स्कूल में शायद ही इस्तेमाल करें। बच्चों द्वारा उपयोग किए जाने वाले एट्लस मानचित्रों, दीवार मानचित्रों और पाठ्यपुस्तकों में दिए जाने वाले नक्शों में ये मानकीकरण लागू नहीं होता। अतः स्कूली पाठ्यक्रम में स्थलाकृतिक मानचित्रों को लेकर जड़ता-सी दिखाई देती है, भले ही ये नक्शे स्कूली पाठ्यक्रम का हिस्सा न होते हों। शैक्षणिक दृष्टि से देखें तो इसके कारण सैद्धान्तिक रूप में कही गई बातों और प्रायोगिक रूप से इस्तेमाल होने वाली चीज़ों में भेद खड़ा हो जाता है।

अतः विद्यार्थियों को दिए जाने वाले मानचित्र प्रशिक्षण तथा सैनिकों को दिए जाने वाले मानचित्र प्रशिक्षण में दार्शनिक या प्रक्रियात्मक रूप से कोई अन्तर नहीं है। लिहाज़ा, यह स्कूली शिक्षा के दौरान आने वाली अनगिनत परिस्थितियों में से लिया जाने वाला मानचित्रों का सिर्फ एक विशेष-उपयोगी पहलू भर है। और विडम्बना देखिए कि यह सैनिक ज़रूरत है! मानचित्रों के शैक्षिक, राजनैतिक, दार्शनिक और सामाजिक सन्दर्भ स्कूलों और कॉलेजों की पाठ्यपुस्तकों में शुमार नहीं किए जाते।

ऐसा क्यों है कि स्कूली शिक्षा में मानचित्रों को सीमित कर दिया जाता है और उन्हें कुछ निश्चित संकेतों, निश्चित रंगों आदि के द्वारा एक स्थाई सत्य मान लिया जाता है? वे लोग जो पाठ्य-पुस्तकों की समीक्षा व समालोचना करते हैं तथा नई पुस्तकें बनाने की कोशिश करते हैं, ज़रूर यह सोचते होंगे कि मानचित्रों व पाठ्य-पुस्तकों का इतना नीरस, अरुचिकर और उत्प्रेरणारहित होना क्यों ज़रूरी होता है। मानचित्रों पर काम करते हुए तथा उनके सन्दर्भों व इतिहासों को समझाने का प्रयास करते वक्त मानचित्र पढ़ाने वाले स्कूल उनके सामाजिक इतिहास की मुरझाई हुई विकृत प्रेतात्माओं जैसे नज़र आते हैं। पर ऐसा क्यों होता है? जीवन्त हकीकत की बजाय प्रेतात्माएँ क्यों बनाई जाती हैं? शायद इसलिए क्योंकि जीवन्तता से जीवन्तता प्रेरित होती है जिसे कि स्कूल में बढ़ावा नहीं दिया जा सकता। प्रेतात्माएँ केवल आपको डराती हैं और आपको सुरक्षित स्थानों में पनाह लेने के लिए मजबूर करती हैं। इससे विद्यार्थी अँधेरे कमरों में छिप जाएँगे और संकरी गली व कूचों से निकला करेंगे। वे सूरज की रोशनी में और मुख्य मार्गों से नहीं निकलेंगे। उन्हें

दुनिया को 'प्रेतात्माओं' के द्वारा मार्गदर्शित मानकर चलना पड़ेगा।

स्पष्ट है कि स्कूली शिक्षा तार्किक रूप से बच्चों को मानचित्रकार बनाने की कोशिश नहीं करती। उसकी एक तय दृष्टि होती है कि मानचित्र तो बस 'प्रदान' किए जाते हैं जिन्हें आपको निर्देशित तरीके से पढ़ना होता है। दार्शनिकों, मानचित्रकारों, या सामाजिक रूप से जागरूक अभिनेताओं के रूप में विद्यार्थियों की कल्पना नहीं की जाती। मानचित्र पढ़ने वाले विद्यार्थियों को भविष्य के ऐसे व्यक्तियों के रूप में नहीं देखा जाता जो देख सकते कि मानचित्रों के मज़बूत सामाजिक जुड़ाव होते हैं, कि मानचित्रों का 'तकनीकी' पहलू कहानी का सिर्फ एक हिस्सा है, कि मानचित्र निर्मित व पुनर्निर्मित किए जाते हैं - कि वे सामाजिक दृष्टि से बनाए जा सकते हैं।

कुछ प्रयास और उनकी सीमाएँ

आइए हम स्कूली शिक्षा में परिवर्तन लाने के लिए देश के भीतर हुए कुछ प्रसिद्ध प्रयासों पर नज़र डालें। केरल में केएसएसपी (केरला शास्त्र साहित्य परिषद) तथा मध्य प्रदेश में एकलव्य के मामले में, हम देख सकते हैं कि मानचित्र अध्ययन को लेकर अभिनव प्रयास किए गए हैं। इन लोगों ने ऐसे तरीके विकसित किए हैं जिनके द्वारा बच्चे कक्षाओं तथा स्कूलों के मानचित्र बना सकते हैं। इसमें बच्चे कमरे की लम्बाई और चौड़ाई को कदमों की गिनती से नापते हैं। फिर एक पैमाना तैयार किया जाता है, उदाहरण के लिए, 5 कदमों को माचिस की 5 तीलियों द्वारा निरूपित किया जा सकता है। इस तरह से तीलियों का इस्तेमाल करते हुए विद्यार्थियों द्वारा कमरे की निर्माण-योजना को मानचित्र पर उतारा जा सकता है। मैंने बच्चों के साथ यह गतिविधि की है और मैं यह कह सकती हूँ कि इससे वाकई पैमाने के सिद्धान्त की समझ बढ़ती है। पारम्परिक शिक्षा की समीक्षाओं में, और देश के कई संगठनों द्वारा तैयार किए गए उसके विकल्पों में, रटकर अध्ययन करने की विधि के विरुद्ध एक सोचा-समझा मार्ग अपनाया गया है और अवधारणात्मक अध्ययन के लिए काम किया गया है। और एनसीएफ (राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा), 2005 द्वारा बच्चे को सीखने की प्रक्रिया के केन्द्र में रखकर इसी तरह के दृष्टिकोणों को और आगे बढ़ाया है।

भले ही हम शिक्षा को लेकर ऊपर उल्लिखित दृष्टिकोणों से सहमत हों, पर यह स्पष्ट है कि इस लेख में उठाए गए ज्ञान के इर्द-गिर्द मौजूद सवालों को सिर्फ इसी दृष्टिकोण द्वारा ही नहीं छुआ जा सकता। यह दृष्टिकोण सिर्फ मानचित्रों के 'दिए गए' विवरण को बच्चों को समझाने हेतु उनके अनुकूल प्रयास करता है। वह बच्चों को पढ़ाने के तरीकों पर ज़रूर सवाल उठाता है, वह रटने की निरर्थकता को उजागर करता है और सीखने के गतिविधि-आधारित तरीके रचता है।

पर वह सूचनाओं और जानकारियों की चयन प्रक्रिया पर तथा मानचित्रों को दर्शाने की सरलीकृत पद्धतियों पर सवाल खड़े नहीं करता। और वह भूगोल के इतिहास से उन सन्दर्भों को चुनने में विफल हो जाता है जो विद्यार्थियों को यह दिखा सकेंगे कि मानचित्र बनाने में सामाजिक दृष्टि जुड़ी हुई है और उनमें बदलाव किए जा सकते हैं।

यमुना सन्नी: एकलव्य, होशंगाबाद के सामाजिक विज्ञान कार्यक्रम का हिस्सा हैं। स्कूली बच्चों के लिए एट्लस के निर्माण में कार्यरत। टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसिज़, मुम्बई में अतिथि प्राध्यापिका।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: भरत त्रिपाठी: पत्रकारिता का अध्ययन। स्वतंत्र लेखन और द्विभाषिक अनुवाद करते हैं। होशंगाबाद में निवास।

इस लेख में संदर्भित सामग्री:

1. *ब्राउन, एल.ए. (1977), द स्टोरी ऑफ मैप्स, डोवर पब्लिकेशन्स इंक, न्यूयॉर्क।*
2. *इडनी, एम.एच (1997), मैपिंग एन एम्पायर: द जियोग्रेफिकल कंस्ट्रक्शन ऑफ ब्रिटिश इंडिया, 1765-1843, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।*
3. *होम्स, एन (1991), पिक्टोरियल मैप्स, वॉटसन-गुप्तिल पब्लिकेशन्स, न्यूयॉर्क।*
4. *मैथ्यूज़, एम.आर (1980), द मार्कसिस्ट थ्योरी ऑफ स्कूलिंग: ए स्टडी ऑफ इपिस्टेमोलॉजी एंड एजुकेशन, हारवेस्टर प्रेस, ससेक्स/ ह्युमेनिटीज़ प्रेस, न्यूजर्सी।*
5. *राज, के (2006), रीलोकेटिंग मॉडर्न साइंस: सर्क्युलेशन एंड द कंस्ट्रक्शन ऑफ साइंटिफिक नॉलेज इन साउथ एशिया एंड यूरोप - सेविनटीन्थ टू नाइनटीन्थ सेंच्युरीज़, परमानेंट ब्लैक, दिल्ली।*
6. *रावत, आइ.एस (1973), इंडियन एक्सप्लोरर्स ऑफ द नाइनटीन्थ सेंच्युरी: एकाउंट ऑफ एक्सप्लोरेशन्स इन द हिमालयाज़, तिब्बत, मंगोलिया एंड सेंट्रल एशिया, पब्लिकेशंस डिविज़न, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।*
7. *स्टोडार्ट, डी.आर (1986), ऑन जियोग्राफी एंड इट्स हिस्ट्री, बेसिल ब्लैकवेल, न्यूयॉर्क।*